**Knowledgeable Research** (An International Peer-Reviewed Multidisciplinary Journal) **ISSN 2583-6633**
**Available Online: http://knowledgeableresearch.com/ Vol.03, No.1, August, 2024**

# दर्शन परम्परा में संस्कृति और धर्म का अवदान

डॉ ऋतु सिंह
असिस्टेंट प्रोफेसर
महिला पी० जी० कॉलेज अमीनाबाद, लखनऊ विश्वविद्यालय,लखनऊ

**********

**शोधसार**

दर्शन अर्थात् साक्षात्कार। "दर्शनं साक्षात्करणम्" अपि च दृश्यते अनेन इति दर्शनम्। दर्शन शब्द का अंग्रेजी में दो शब्दों से बनना है ग्रीक् "सोफिया" ओस "फिलोस्" फिलोसोफि शब्द से किया जाता हैं। यह शब्द पदों से बना हैं। जिनका क्रमश और 'प्रेम' अर्थ हैं:- वती या विद्या देवी का अर्थ हुआ 'फिलोसोफी' अतः विद्या प्रेम या ज्ञान के प्रति अनुराग। मानव मन में स्वयं को और बाह्य जगत् को जानने की नैसर्गिक प्रवृत्ति होती है। दार्शनिक चिंतन मानव की मूल प्रवृत्ति है। प्रत्येक व्यक्ति को कोई न कोई जीवन-दृष्टि जीवन**,** मूल्य या दर्शन अवश्य होता हैं। भारतीय दर्शन प्रायः अपरोक्षानुभूति या आत्मसाक्षात्कार को प्रधान और बौद्धिक चिंतन को गौण मानता है। दर्शन शब्द का अर्थ ही है साक्षात् देखना अर्थात् परमतत्त्व का साक्षात्कार या अपरोक्षानुभव। आत्मा को जानो आत्म नां विद्धि यह भारतीय दर्शन का उद्घोष है।

***बीजशब्दः*** *- अपरोक्षानुभूति, नैसर्गिक, नृतत्त्वशास्त्रीय, सृजनशीलता, अपरोक्षानुभव, अर्थाभ्युपगम।*

**********

मनुष्य अपनी नैसर्गिक स्थिति को वास्तविकता में जो सुख जीवन, दुःख मरण आदि का द्वन्द्व देखता हैं उस स्थिति की अपर्याप्तता स्पष्ट हो जाती है। और इस गोचरता से परे वह गवेषणा करना चाहता हैं। फलतः नैसर्गिक यह आनुभविक स्तर से गति कर व्यवहार की कुशलता या उपयोगिता के क्षेत्र में पहुंचता है। यह उसकी स्थूल अर्थमूलकता का क्षेत्र है जो सभ्यता दक्षता, तकनीक के जन्म व विकास को सम्भव बनाता हैं। किन्तु इस स्थूल अर्थ जगत् में मनुष्य को अपनी पर्याप्तता का बोध नहीं हो पाता क्योंकि, उसका बाह्य वातावरण प्रभावित इससे अधिकांशत हो पाता है। वह इससे भी आगे मूल्यों या आदर्शों की सूक्ष्म अर्थो की क्षेत्र की ओर अग्रसर होता हैं। उसके आदर्शमूलक आत्मबोध का यह क्षेत्र मानव संस्कृति के उद्भव और विकास से सबन्धित हैं।

दर्शन और धर्म का घनिष्ठ सम्बन्ध हैं। भारतीय दर्शन के कई सम्प्रदाय धार्मिक सम्प्रदाय भी हैं। महर्षि याज्ञवल्क्य का उपदेश "आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः" भारतीय दर्शन और धर्म का मूलमंत्र हैं। इसका अर्थ हैं आत्मा साक्षात् अनुभव करने योग्य हैं और यह अनुभव श्रवण तथा निदिध्यासन से प्राप्य हैं। चार्वाक मत को छोडकर लगभग सभी भारतीय दर्शनों ने इसे न्यूनाधिक रूप में स्वीकार किया हैं।

## भारतीयदर्शन में संस्कृति

प्रत्येक संस्कृति में एक विश्व दृष्टि होने के पीछे मानवकी मूल्य चेतना का यहीं अनिवार्य पक्ष कार्यरत रहता हैं। अतः संस्कृतियों में जन्म लेने वाली और इसी लिए उनके विशिष्ट मूल्यों के प्रति सजग रहने वाली में यह उपरोक्त कथन महत्त्वपूर्ण हैं।

दार्शनिक परंपराओं के बारे संस्कृतिका अर्थः संस्कृति मनुष्य में मूल प्रवृत्ति मूलक या प्राकृतिक नहीं हैं, वह मनुष्य द्वारा अर्जित हैं। वह एक साथ ही उलब्धि हैं। और परंपरा रूप में सामाजिक उप वैयक्तिक अर्जन हैं और व्यक्ति के लिए प्रेरणाप्रद व फलप्रद हैं संस्कृति का अर्थ हैं मूल्यों की आत्मबोध की परंपरा, मूल्य मानव मूल्याङ्कन के अव्यवहित विषय हैं। मानव चेतना में मूल्यों के उन्मेष की प्रक्रिया भी हैं। इस उन्मेष प्रक्रिया को सामाजिक ऐतिहासिक वास्तविक मूल्यवान सिद्ध हुए अनुभवों की अभिव्यक्ति और सम्प्रेषण द्वारा मिलती हैं। ये अनुभव आत्मचेतन और वैयक्तिक होते हैं और प्रतीकों के रूप में सामाजिक सम्प्रेषण व परम्परा में प्रविष्ट होते हैं। अत इस दृष्टि से संस्कृति का अर्थ हुआ मूल्य गवेषणा और अनुभव की सामाजिक अभिव्यक्ति जबकि मूल्य बोध जिस विशिष्ट प्रक्रिया से होकर गुजरता हैं उसी से इतिहास को उसका अर्थ मिलता हैं। यहां यह भी द्रष्टव्य हैं की मनुष्य द्वारा रचित उसका अपना उपादानमूलक पदार्थिक परिवेश अन्ततः उसके विशिष्ट सांस्कृतिक संस्कार या मूल्य बोध पर ही निर्भर करता हैं।

जिसमें उद्योग (पैटर्न) कभी कभी संस्कृति को एसा संस्थान तकनीकी, सामाजिक व्यवस्था आदि एकरूपेण समाविष्ट होते हैं। यह मत ठीक-ठीक स्पष्ट नहीं हैं। किन्तु इतना तो स्पष्ट ही हैं कि इस तरह की एकरूपता के फलस्वरूप संस्कृति की आकारिकता बढने और फलत उसकी सृजनशीलता के घटने का खतरा पैदा होता हैं। सांस्कृतिक एकरूपता वैयक्तिक अनुभव में अधिष्ठित होती हैं जबकि तार्किक, ऐतिहासिक होती है। आकारिक या व्यवस्थामूलक एकरूपता की प्रवृत्ति व्यक्ति निर्पेक्षता की और यहाँ तक की परा अधिष्ठान वैयक्तिक अनुभव ही होता हैं।

**संस्कृति और ऐतिहासिक प्रक्रिया**

जिस तरह संस्कृति मात्र नृतत्त्वशास्त्रीय या समाजशास्त्रीय विवरण नहीं हैं उसी तरह इतिहास भी न तो मृत् बीता हुआ हैं न तो उसका विवरण मात्र ही हैं। यहाँ दो बातें द्रष्टव्य हैं एक मानव मनस् का विकास सदैव आत्मबोधात्मक हैं क्योकि मनस् आत्मरूप हैं और दूसरी उसका यह विकास इतिहास का सही आशय व्यक्त करता हैं। मानसिक विकास को आत्मबोधात्मक मानने से उसे विशिष्ट व्यक्ति केन्द्रित मानने का अर्थ नहीं हैं। ऐतिहासिक प्रक्रिया के सन्दर्भ में सन्देह मनस् एक नहीं अनेक हैं और वे सभी जिन दो मतों का उल्लेख ऊपर हुआ हैं वे उक्त अमूर्त प्रकृति के इतिहास पर लागू हो सकते हैं किन्तु तद्, इतिहास में निहित बौद्धिकता को प्रकृति इतिहास भी वास्तविक न होकर अमूर्त होता हैं। अतः विज्ञान की बौद्धिकता मानना भ्रमात्मक हैं। जैसा की बोसांके ने कहा हैं "इतिहास के अन्तर्गत मनुष्य के व्यक्तित्व क्रिया व बुद्धि में उसका जो भाव प्रकट होता हैं उसे हम सापेक्षता और अनिवार्यता के अमूर्त प्रत्ययों में खोना नहीं चाहते"। फलतः संस्कृति के सन्दर्भ वाला इतिहास सीधे मनस् के आत्मबोद्धात्मक जीवंत अनुभव क्षेत्र से जोङता हैं।

मानस के उत्क्रांतिमूलक विकास से ही संस्कृति के उच्चतर स्तरों का विकास सम्भव होता हैं। सत्य, गति सदैव नाना शिव या प्रेम या स्वतंत्रता जैसे उच्चतर मूल्यों की जीवन में अभिव्यक्ति देने की दिशा में प्र, सुन्दर रूपात्मक बाह्य निसर्ग के अन्तर्विरोधी तत्वों के एक सामञ्जस्य स्थापित कर सकने की मानव क्षमता पर ही निर्भर करती हैं l

**संस्कृति अर्थाभ्युपगम और रूप**

सामान्यतः प्रकार के हमारी संस्कृति में यदि देखा जाये तो संस्कृति की अर्थाभ्युपगम क्रिया में मूलतः अर्थाभ्युपगम दृष्टिगोचर होते हैं।

1. परिवर्तनमूलक

2. निर्देशमूलक

3. स्तरमूलक

संक्षेप में परिवर्तनमूलक अर्थाभ्युपगम एक ऐसी विकासमान प्रक्रियाकों उद्भासित करते हैं जिसमें स्वाभाविक असता होती हैं इसके अन्तर्गत विकास का रूप अर्थवत्ता का होता हैं भाववत्ता का नहीं। निर्देश मूलक अर्थाभ्युपगम उन विभिन्न दिशाओं को उद्भासित करते हैं जिधर बाह्यस्थ प्रकृति और अन्तस्थ मनस् अनुभवों को अपनी और खींचते हैं या स्वयं उनकी और खींचते हैं। स्तरमूलक अर्थाभ्युपगम आत्मबोध या अनुभव के उन अंश भेदो के उद्भासक हैं जो कमोवेश शुद्ध चेतना तक पहुंचने की सक्रियता प्रकट करते हैं। इस प्रकार संस्कृति का अर्थाभ्युपगम और रूप दर्शाया गया हैं।

**संस्कृतियों में संस्कृति**

संस्कृत्यों के बीच भेद पैदा करने वाले तत्त्व सामान्यतः दो हैं :

1. अपूर्ण संप्रेषण।

2. स्वार्थो की टकराहट।

संस्कृति को इस तरह समजने और जानने में ही सांस्कृतिक विकास निहित हैं। मानवीय आत्मचेतना के विकास की प्रक्रिया ही इस तरह हैं की उसमें अपूर्ण चेतना पूर्ण चेतना में विकसित होना चाहती हैं। यहीं मानव चेतना की अमिट लालसा और अन्वेषण का सुख हैं और साथ ही उसमें अन्तर्निहित विरोधाभास भी और नि-सन्देह मनुष्य को इसी तरह समझा जा सकता हैं। मनुष्य और संस्कृति की ठीक-ठीक समझने के लिए हमें मानव इतिहास को इसी रूप में समझना चाहिए।

**भारतीय दर्शन में धर्म**

भारतीय दर्शन में धर्म के स्वरूप के विषय में अनेक मत प्राप्त होते हैं। इनमें एक प्रसिद्ध मत यह हैं की धर्म एक ही हो सकता हैं अनेक नहीं। धर्म शब्द संस्कृत भाषा का शब्द हैं जो धू धारणे एवं मन् प्रत्यय से इन दोनो ही निष्पन्न होता हैं। इसका अर्थ यह हैं की जीवन का चाहे व्यक्तिरूप को तथा सामाजिक रूप हो रूप में जीवन के तत्त्वों एवं कारको के धारण करने से व्यक्ति एवं समाज का निर्माण होता हैं जिनके धारण भारतीय दर्शन में धर्म का जो लक्षण किया गया हैं करने से समाज तथा व्यक्ति श्रेष्ठ एवं महान् कहलाता हैं। अत उसको प्रस्तुत करना आवश्यक हैं।

**धर्म का लक्षण**

भारत के प्रथम समाजशास्त्री मनु ने धर्म का लक्षण प्रस्तुत किया हैं कि धर्म धारण करना, मद, क्षमा, इन्द्रियों पर संयम करना, शुद्ध एवं पवित्र रहना चोरी न करना, मोह आदि वृत्तियों का दमन करना, लोभ ज्ञानवान का धारण करना ही धर्म का लक्षण हैं। उत्तम बुद्धि इसी प्रकार मनु नें धर्म का संक्षिप्त लक्षण करते हुए कहा हैं कि आत्मन्, **प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥ मनु ॥** आत्मा के अनुकुल आचरण करना चाहिए यहा पर आत्मा का अर्थ हैं, और दूसरों के प्रतिकूल आचरण नहीं करना चाहिए किसी भी परिस्थिति में सम्मुख आने पर जो अन्तर्ज्ञान उत्पन्न होता हैं उसके अनुसार आचरण करना ही धर्म कहलाता हैं।, इसे धर्म का साक्षात् लक्षण माना हैं।

वैशेषिक दर्शन में धर्म का लक्षण किया हैं जिस आचरण से लौकिक एवं पारलौकिक उन्नति होती हैं, उसे धर्म कहते हैं। मीमांसा दर्शन में धर्म का लक्षण किया हैं की जो अच्छे कर्म करने की और प्रेरित करता हैं वह धर्म हैं।

**धर्म और दर्शन**

गीता के प्रथम अध्याय का प्रथम श्लोक -

**धर्मक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे समवेता युयुत्सवः ।**
**मामकाः पाण्डवाश्चैव किमकुर्वत सञ्जय ॥**
**यत्र योगेश्वर कृष्णोः यत्र पार्थोधनुर्धरः ।**
**तत्र श्रीर्विजयोर्भूतिर्भुवानितिर्मतिर्मम ॥**

मम धर्म अर्थात् मेरा धर्म इन्हीं दो शब्दों में गीता दर्शन में हैं। इससे भी यह प्रमाणित होता हैं अनुस्युत हैं। यहाँ का दार्शनिक पहले धार्मिक है की भारत में धर्म और दर्शन एक दूसरे के पूरक होते हुए भी फिर भी दर्शनिक हैं। धर्म और दर्शन दोनों में अन्योन्याश्रय सम्बद्ध हैं। यहाँ के दर्शन व्यवहारिक होने के कारण जीवन से सम्बध्द हैं। यहाँ दर्शन और धर्म का तथा तत्वज्ञान का युग युगान्तर बदलता हैं तब युग में गहरा सम्बन्ध रहता है। किन्तु धर्म भी बदल जाता हैं। आज हम भारतीयों का जीवन एक अभूतपूर्व क्रांति से गुजर रहा हैं। आज अमूलक्रांति की सम्भवाना बनी हैं जो पूर्व से ज्ञात हैं वे छुट रहे हैं। भारतीय धर्म और दर्शन ने हाथ में हाथ मिलाकर अनेक झेला हैं। अब उसका भी अभिनव रूप हमारी सामने आने परिवर्तनों और प्रहारों को ही वाला हैं जो इस एकत्व भाव का वहीं सच्चा दार्शनिक हैं। भारतीय दार्शनिक, वहीं धार्मिक हैं, विराट विश्व से एकत्त्व का अनुभव करता हैं, उसकी सत्ता हैं। ब्रह्म या धार्मिक ईश्वर से बाहर कुछ भी नहीं हैं। यह सब वहीं तो हैं। विश्व में इनके बावजूद भारतीय दर्शन समन्यवयवादी एवं आशावादी हैं। विपरीत से विपरीत परिस्थितिकों भी परमात्मा के मार्ग में भारतीय दर्शन बाधा नहीं मानते ।

**दर्शनों में धर्म**

भारतीय दर्शन छः प्रकार का माना गया हैं। प्रत्येक दर्शन में धर्म का वर्णन दिखाई पडता हैं। इनमें से कुछ दर्शन में वर्णित धर्म का विवरण नीचे बताया गया हैं -

सांख्यदर्शन की यह मान्यता वेदो और उपनिषदों की अनुसार हीं हैं। क्योंकि मुण्डकोपनिषद में भी कहा हैं। की वह ईश्वर सर्वज्ञ हैं। सब प्रकार के ज्ञान का प्रदाता हैं। तथा वहीं सब से बड़ा तप हैं। इसी प्रकार महाभारत के शान्ति पर्व में कहा हैं की धर्म वैराग्य और ऐश्वर्य आदि की पराकाष्ठा ईश्वर में ही हैं। ज्ञान इस प्रकार सांख्य दर्शन में धर्म का विवरण किया गया हैं।

**योग दर्शन**

योग दर्शन में भी ईश्वर की सत्ता को स्वीकार करते हुए कहा हैं की परम सत्ता ईश्वर की ही हैं। ईश्वर के साक्षात्कार से ही कैवल्य की प्राप्ति होती हैं। समाधि प्राप्ति के उपायों में सर्वप्रथम ईश्वर प्रणिधान को बतलाया हैं अर्थात् ईश्वर के लिए सब कुछ समर्पित कर देना। ऐसा योग दर्शन में धर्म के विषय में बताया गया हैं।

**वेदान्तदर्शन में धर्म**

वेदान्त दर्शन में ईश्वर और धर्म के बारे में सिद्ध किया हैं की सृष्टि की रचना तथा जन्मादि ईश्वर के द्वारा सिद्धि सम्भव हैं इसी लिए उस ब्रह्म की होती हैं। 10 धर्म का उद्देश्य साधक और ईश्वर के साथ तादात्म्य सम्बद्ध उपस्थित करना हैं। मानव धर्म साधन के द्वारा आराध्य वस्तु के प्रति अपनापन तथा निकटतम का भाव व्यक्त करना चाहता हैं। धर्म के इस उद्देश्य की पूर्ति भावना से ही सम्भव हैं। ज्ञानधर्म की इस मांग की अवहेलना करता हैं।

विश्व में अनेक ऐसे धर्म हैं जिसमें मूर्ति पूजा की जाती हैं। मानव पत्थर मूर्ति को ईश्वर का प्रतिरूप समझता हैं।

**उपसंहार**

भारतीय का सही सांस्कृतिक एकीकृतरूप उसकी सामाजिक परम्परा में मिलता हैं। तथा धर्मो में जीवन जीने का तरीका मिलता हैं। संस्कृति से ही मानव की मानवता का पता चलता हैं। हमारे दर्शनों में संस्कृति जीवन जीना सीखती हैं तथा धर्म जीवन कैसे जीया जाये उसका मार्ग दर्शाता है। भारतीय परंपरा में एक प्रकार से संस्कृति को आत्मा और धर्म को प्राण कहा गया हैं। हमारे भारतीय दर्शनों में संस्कृति के बारे में बताया हैं सुसंस्कारों से हमारी लुप्त होती हुई संस्कृति का निर्माण करने में और इसमें धर्म मार्ग निर्देश करता है। हमारी भारतीय संस्कृति में जैसे समय समय पर धर्म की आवश्यकता रहती हैं। यथा

**यदा यदा ही धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।**
**अभ्युत्थामधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥**

जब जब धर्म का नाश होता हैं तथा अधर्म बढ जाता हैं तब मैं मेरी आत्मा का सर्जन करता हूं। ये भगवान श्रीकृष्ण अर्जुन को गीता का जब उपदेश देते हैं तब बताते हैं ओर आगे भी कहते हैं की -

**पवित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृतां ।**
**धर्म संस्क्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥**

स्वधर्म में रहने वाले सत्पुरुषों के रक्षण करने के लिए दुष्ट कर्म करने वाले लोगों का नाश करने के लिए तथा स्वधर्म की स्थापना करने के लिए मैं युग-युग में अवतार को धारण करता हूँ। अनेक कारण से वर्तमान भारत में भारतीय सरकार एवं

उसके संविधान में धर्म निरपेक्षता महत्त्वपूर्ण स्थान हैं। इसका शाब्दिक अर्थ हैं की धर्म की अपेक्षा रहित और इसी तरह संस्कृति मतलब परिवर्तन हैं। व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और समष्टिगत एकता मानवजाति की एकता। मानवजाति की यही एकता संस्कृति और धर्म के स्वरूप का निर्धारण का आधार हैं। भारत में अनेक अवसरों पर अथवा अनेक सुधारको द्वारा ऐसा प्रयास किया जाता हैं की विश्व को एक बनाया जाये क्योंकि भिन्न भिन्न संस्कृति और धर्म को मानने वालो ने अनेक समस्याए उत्पन्न की हैं। उसके कारण अनेक विद्वानों ने उसकी आलोचना की हैं। परन्तु समय समय पर यह प्रयास होता हैं की संस्कृति तथा धर्मों के प्रमुख सिद्धान्तों को सम्मिलित करके एक विश्व की स्थापना की जाए।

समकालीन भारतीय दार्शनिक एवं समाज सुधारकों में महर्षि दयानन्द श्री अरविंद और स्वामीविवेकानन्द आदि अनेक विद्वानों ने भी यह प्रयास उत्पन्न हुई समस्याओं का समाधान होना चाहिए। उनके लिए अनेक प्रयास किये गये हैं ताकि सर्वमान्य संस्कृति तथा धर्म की स्थापना की जा सके। जब तक संस्कृति तथा धर्म का वैज्ञानिक स्वरूप अथवा धर्म का अर्थ वैधारक में कारक माने जाते रहे जिनको जीवन, धारण करना आवश्यक हैं। जिनके बिना आध्यात्मिक, आधिदैविक विश्व के उन्नति सम्भव नहीं हैं आधिभौतिक, सम्प्रदाय तब तक ही संस्कृति और धर्म धर्म हैं। निष्कर्ष रूप में यह कहा जाता हैं की सार्वभौमिक सम्प्रदाय के साथ संस्कृतिशब्द आग्रह को जन्म देता हैं। यद्यपि प्रत्येक सम्प्रदाय, धर्म शब्द को लिखा हैं वह केवल इस लिए लिखा हैं की संस्कृति परिवर्तन और धर्म शब्द सम्प्रदाय के पर्याय के रूप में रूढ हो गया हैं। संस्कृति तथा धर्म का यह प्रवाह सतत बना रहेगा तो इसको समाप्त करना सम्भव प्रतीत नहीं होता हैं।

**सन्दर्भ ग्रन्थ सूची**

१. भारतीय दर्शनशास्त्र का इतिहास

२. भारतीय दर्शन - Indian philosophy

३. भारतीय दर्शन - बृहत्कोश

४. भारतीय दर्शन के ५० वर्ष

५. भारतीय दर्शन आलोचन और अनुशीलन

६. श्रीमद्भगवद्गीता १८/७८

७. यह सर्वज्ञ सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तपः मुण्डकोपनिषद् - १//१/९

८. ईश्वरसिद्धि सिद्धाः सानिध्यमात्रेणेश्वरस्य सिद्धस्तु श्रुति, स्मृतिषु सर्वसमते इत्यर्थः । सां.सु.

१०. ईश्वर प्रणिधानाद्वा। यो.सु. १/२३

११. जन्माध्यस्य यतः ब्रह्मसूत्र, १/१/२

१२. धृतिक्षमादमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहम्। धिर्विद्या सत्यमक्रोधोदशकं धर्म लक्षणम्॥ मनु, २-२५

१३. यतोभ्युदय निःश्रेयससिद्धिः स धर्मः। वैशेषिक सूत्र

१४. चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः। पूर्वमीमांसा सूत्र -१.१.२

१५. श्रीमद्भगवद्गीता - १/९

Corresponding Author: Dr.Ritu Singh
E-mail: rituvinaysingh@gmail.com
Received 12 August 2024; Accepted 22 August 2024. Available online: 30 August, 2024
Published by SAFE. (Society for Academic Facilitation and Extension)
This work is licensed under a Creative Commons Attribution-Noncommercial 4.0 International License